IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

संगीत में राग के तत्वों का वर्णन

मीरा कुमारी

उच्चतर माध्यमिक प्रशिक्षित शिक्षिका (संगीत)

सार–

संगीत ही नहीं कोई भी निर्माण कार्य करने के लिए कुछ आवश्यक सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है तभी वह निर्माण कार्य पुरा होता है संगीत में राग का निर्माण भी बहुत सारे तत्वों के द्वारा हुई है। ये तत्व मिलने के बाद ही राग में रंजकता आती है जिससे मनुष्य के मन का रंजन होता है। जैसे–नाद, श्रुति, स्वर, वादी संवादी, अनुवादी, विवादी, वर्ण, अलंकार, आलाप, तान, गमक आदि।

मुख्य बिंदु–

1. निमित
2. निरर्थक
3. अनंत
4. नकार
5. दकार
6. स्थुल
7. शब्दालंकार
8. वर्णालंकार

परिचय– संगीत ही नहीं कोई भी निर्माण कार्य करने के निमित कुछ आवश्यक सामग्रयिों की आवश्यकता पडत्रती है तभी वह निर्माण कार्य पूरा होता है। अगर हम भवन निर्माण को ही ले तो उसके लिए ईट, पत्थर, बालू सिमेंट, छड़ आदी की आवश्यकता पड़ती है तभी भवन का सही से निर्माण हो पाता है। ठीक उसी प्रकार संगीत में राग रूपी भवन का भी निर्माण करने से पहले कुछ आवश्यक तत्वों की आवश्यकता पड़ती है जिसकी नींव पर राग रूपी भवन स्थित रहता है।

ये आवश्यक तत्व निम्न है :–

1. नाद
2. श्रुति
3. स्वर
4. वादी
5. संवादी
6. अनुवादी
7. विवादी
8. वर्ण
9. अलंकार
10. आलाप
11. तान
12. गमक

1. नाद :– यह संगीत का प्राण है। इसके बीना संगीत की कल्पना भी निरर्थक है। क्योंकि ध्वनियाँ तो अनंत होती है, लेकिन सभी ध्वनियों को संगीत के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। जो ध्वनि एक निश्चित मात्रा एवं लयबद्ध हो उसे ही संगीत के लिए उपयोगी माना जाता है।

   संगीत अध्येताओं ने ध्वनि, शब्द और आवाज को ही नाद की संज्ञा दी है।

   नकारं प्राणनामानं दकारमनलं बिंदुः।

   जातः प्राणग्निसंयोगा तेन नादोऽभिधीयते।

जहाँ नकार का संबंध प्राण से एवं दकार का संबंध अग्नि से है इसलिए प्राण, वायु और अग्नि के संयोग से ही उत्पति होने के कारण ध्वनि शब्द को आचार्यो ने नाद कहा है। नाद सम्पूर्ण विश्व में व्याक्त है। नाद के बिना जीवन नहीं और जीवन बिना नाद के नहीं है।

नाद के प्रकार

नाद के दो प्रकार :– (1) अनाहत नाद (2) आहत नाद

1. अनाहत नाद :– यह नाद योगी समुदाय के लिए है। यह नाद मुक्ति दायक है। इस नाद को साधारण मनुष्य अपने स्थुल कानों से नहीं सुन सकता, इसलिए इस नाद के अंतर्गत गायन, वादन नहीं होता है।

2. आहत नाद :– इस नाद को सभी प्राणी अपने स्थुल कानों द्वारा सुन सकते है। यह दो वस्तुओं के घर्षण से उत्पन्न होता है। इसी नाद के अंतर्गत समस्त संसार में गायन वादन होता है।

नाद की विशेषताएँ

नाद की तीन विशेषताएँ है।

1. तीव्रता :– (बड़ा अथवा छोटा) इससे यह ज्ञात होता है कि कोई भी ध्वनि कितनी दूर है या पास है।
2. तारता :– (ऊँचाई–नीचाई) इससे नाद की ऊँचाई–नीचाई स्वर अथवा नाद की आंदोलन संख्या पर आधारित होती है। अधिक आंदोलन संख्या वाला स्वर ऊँचा एवं इसके विपरीत कम आंदोलन संख्या वाला स्वर नीचा होता है। जैसे गाते समय यह अनुभव होता है कि सा से ऊँचे ग होता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि ग की आंदोलन सा से अधिक होगी। इसी प्रकार ग से नीचा रे होता है, इसलिए रे की आंदोलन ग से कम होगी।
3. जाति अथवा गुण :– सभी वाधों का स्वर एक दूसरे से भिन्न होता है जैसे–सितार का स्वर बेला से और बेला का स्वर हारमोनियम से और हारमोनियम का स्वर सरोद से भिन्न होता है। यह पहचान नाद की जाति अथवा गुण के कारण ही संभव होता है।

2. श्रुति :– ''श्रुयते इतिः श्रुति''

अर्थात जिसे हम सुन सकते है और वह कर्णप्रिय हो वही श्रुति है। यह संस्कृत के श्रु धातु से बना है, जिसका अर्थ सुनना है। यह भारतीय संगीत का मूलाधार है। विद्वानों ने श्रुतियों की संख्या 22 मानी है और इन्ही 22 श्रुतियों पर भारतीय स्वरों की स्थापना की गई है।

4. स्वर :– राग का मूलभूत उपादान स्वर है श्रुतियों से ही स्वरों की उत्पति होती है। वायुमंडल में नियमित आंदोलन से उत्पन्न ध्वनि जिसका प्रयोग संगीत में होता है, वह विशेष प्रकार की ध्वनि और श्रुति ही स्वर नाम से विख्यात है। इसके उच्चारण से ही श्रोताओं के मन में अनुराग उत्पन्न होता है। भारतीय संगीत में मुख्य 7 एवं कुल 12 स्वर माने गए है। जैसे– सा, रे, ग, म, प, ध, नि के रूप में प्रयुक्त है। जिसमे सा, प स्वर अचल एवं रे, ग, म, ध, नी स्वर चल माने गए है।

5. वादी स्वर– राग में जो स्वर बार–बार प्रयोग किया जाए तथा जिस स्वर पर राग प्रतिष्ठित किया जाता है, जिससे राग का निश्चित बोध होता है और वह राग रूपी राज्य का राजा होता है, वादी स्वर कहलाता है। इस स्वर के प्रयोग से रागों के गायन वादन के समय निर्धारण में भी सुविधा मिलती है। जब किसी राग में सप्तक के पूर्वांग में से कोई स्वर वादी होता है तो उसे पूर्णंगवादी राग कहते है और उसके गाने का समय प्रायः दिन रात के पूर्वांग समय अर्थात दिन के 12 बजे से रात के 12 बजे के बीच होता है। जिसका वादी स्वर पूर्वांग में होता है तो वह पूर्वांगवादी राग कहलाता है और जिसका उतरांग में होता है तो वह उत्तरांग वादी कहलाता है। केवल वादी–स्वर के बदलने से राग भी बदल जाते है चाहे बाकी स्वर समान हो तब भी उसी स्वर पर राग का सौन्दर्य भी निर्भर करता है।

6. संवादी स्वर :– वादी से कम परंतु अन्य सभी स्वरों से महत्वपूर्ण स्वर को संवादी स्वर कहते है। दोनों स्वरों में षडज–पंचम या षडज–मध्यम भाव रहना चाहिए अर्थात दोनों स्वरों में परस्पर 13 श्रुतियों का अन्तर होता है। संवादी को राग रूपी राज्य का मंत्री भी कहा जाता है।

7. अनुवादी स्वर :– वादी, संवादी को छोड़कर राग में जितने स्वर प्रयोग किए जाते है उसे अनुवादी स्वर कहते है। इसे राग रूपी राज्य का सिपाही भी कहा जाता है।

8. विवादी स्वर :– विवादी स्वर के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान कहते है कि इसका अल्प प्रयोग होगा कुछ कहते है कि नहीं होना चाहिए। पं0 भातखंडे जी के अनुसार यदि कुशलता पूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाए तो उससे राग की सुंदरता भी बढ़ती है। वर्त्तमान समय में अनेक रागों में भी विवादी स्वर का प्रयोग होने लगा है। जैसे–हमीर, कामोद और गौड़सारंग राग में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते प्रयोग किया जाता है जो बहुत ही कर्णप्रिय लगता है। इसका प्रयोग जब भी करें काफी सावधानी से करनी पड़ती है। क्योंकि विवादी तो विवादी ही होता है। इसका प्रयोग बहुत अल्प मात्रा में किया जाता है।

9. वर्ण :– संगीत में गायन की क्रिया को ही शास्त्रकारों ने वर्ण कहा है। इसे दो भागों में विभक्त किया है।

(1) स्वर वर्ण (2) व्यंजन वर्ण

संगीत रत्नाकर में संगीत के चार भेद माने गए है।

(1) स्थायी (2) आरोह (3) अवरोही (4) संचारी

10. अलंकार :– अलंकार का शाब्दिक अर्थ गहना या आभूषण है जिस प्रकार मनुष्य अपने आप को सुंदर बनाने के लिए भिन्न–भिन्न आभूषणों का प्रयोग करता है। उसी प्रकार भिन्न–भिन्न स्वरों की जोड़ियों के द्वारा अलंकार किया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि विशेष स्वर समूह अथवा क्रमानुसार स्वर समूदाय को ही अलंकार कहते है।

अलंकार के दो भेद है

(1) शब्दालंकार (2) वर्णालंकार या अर्थालंकार

जहाँ शब्दों का चमत्कार होता है उसे शब्दालंकार और जहाँ अर्थ में चमत्कार होता है उसे अर्थालंकार कहते है।

अलंकारों की संख्या निश्चित नहीं है। भरत ने 33, शारंगदेव ने 63 और अहोबल ने 68 प्रकार के अलंकारों का विस्तृत वर्णन अपने–अपने ग्रंथो में किया है।

11. आलाप :– संगीत में आलाप का अर्थ राग में प्रयोज्य स्वरों के विस्तार से होता है वर्त्तमान समय के प्रचलित आलाप, तान, प्राचीन अनिबद्ध गान के अंतर्गत रूपकालाप और आलप्ति का ही रूपान्तर है।

आलाप करने के दो ढंग है :–

(1) नोम्–तोम् द्वारा (2) आकार द्वारा

नोम्–तोम् का आलाप तन देरे दिम् इत्यादि शब्दों के साथ किया जाता है और आकार का आलाप आऽऽऽ के उच्चारण द्वारा किया जाता है। नोम्–तोम् के आलाप को प्राचीन काल की ईश्वरोपासना का बिगड़ा हुआ रूप है।

आलाप में अलंकारिक खटके, मुर्की, गमक इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। आलाप गान के मुख्य चार भाग होते है। जिन्हे स्थायी अंतरा, संचारी, आभोग कहा जाता है। स्थायी का आलाप विलंबित लय, अन्तरा बिलंबित मध्य, संचारी बिलंबित दुत एवं आभोग का विस्तार मध्यलय पर ही किये जाने की प्राचीन परम्परा रही है।

12. तान :– तान शब्द की उत्पति संस्कृत के ''तम्'' धातु से हुई है जिसका अर्थ है विस्तृत होना। द्रुत गति से स्वरों का विस्तार करने की क्रिया को तान कहते है शुद्ध तानों की संख्या 49 और कुटतानों की संख्या 5048 है। आधुनिक समय में तानों की मुख्य प्रकार निम्न है।

(1) शुद्ध तान या सपाट तान (2) मिश्रतान (3) कुटतान

(4) खटके की तान (5) झटके की तान (6) वक्रतान (7) सरोक तान

(8) लड़न्त तान (9) बोलतान आदि (10) जबड़े की तान

13. गमक :– इसका प्रयोग संगीत में प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। रागों में सौंदर्य को बढ़ाने के लिए इस तत्व का प्रयोग होता है दो स्वरों से उत्पन्न हुई कम्पनयुक्त ध्वनि जो श्रोताओं को सुख प्रदान करें ऐसे कंपन युक्त स्वरों की विशेष ध्वनि को ही गमक कहा जाता है। गमक 15 प्रकार के माने गए है।

तिरिप, स्फुरित, कंपित, लीन, आंदोलित, वलित, विभिन्न, कुरूल, आहत, उल्लासित, प्लावित, हम्फित, मुद्रित, नामित और मिश्रित।

आधुनिक विद्वान गमक की व्याख्या इस प्रकार करते है कि जब ह्रदय से जोर लगाकर गंभीरता पूर्वक कुछ कम्पन के साथ स्वरों का प्रयोग किया जाता है तो उसे गमक कहते है।

संदर्भ :–

1. टाक सिंह डॉ0 तेज, सुबोध संगीतशास्त्र पृ0–06, 08, 14, 27
2. श्रीवास्तव हरिश्चन्द्र, राग परिचय, पृ0–160, 163,
3. श्रीवास्तव प्रो0 हरिशचन्द्र, प्रभाकर प्रश्नोत्तर पृ0–186
4. शर्मा डॉ0 मृत्युंजय, त्रिपाठी रामनारायण, संगीत मैनुअल पृ0–172, 173, 180
5. बसंत, संगीत विशारद पृ0–245
6. श्रीवातव प्रो0 हरिश्चन्द्र राग परिचय पृ0–99–100

वैदिक काल में संगीत का महत्व

मीरा कुमारी
उच्चतर माध्यमिक प्रशिक्षित शिक्षिका
(संगीत)

सार

वैदिक काल का आरम्भ आर्यो के आगमन से हुआ। वैदिक सभ्यता ग्रामीण सभ्यता थी। वैदिक काल को दो भागों में विभाजीत किया गया है।

1. पूर्व वैदिक काल (ऋग्वैदिक काल) –1500–1000 ई0 पूर्व
2. उत्तर वैदिक काल –1000–600 ई0 पूर्व

इस काल में सामाज में वर्ग व्यवस्था स्थापित हो गई थी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र, जिसमें सभी वर्गो को ब्राह्मणों के द्वारा ही विद्या एवं संगीत का ज्ञान दिया जाता था। उस समय स्त्रीयाँ भी खुले मंच पर अपना गायन, वादन एवं नृत्य प्रस्तुत करती थी। वैदिक काल में मुख्य रूप से वीणा वादन स्त्रीयों के द्वारा होता था। वैदिक काल में सामगान हुआ करता

था। इसमें तीन स्वरों का गान सामिक कहलाता है। यज्ञों में देवताओं को आमंत्रित करने के लिए सामगायन मुख्य रूप से होती थी।

मुख्य बिंदु :– (1) सामिक गान

(2) मिश्रतयथेष्ट

(3) अश्वमेघ यज्ञ

(4) अनुशीलन

(5) शतपथ ब्राह्मण

(6) परिगणित

(7) उद्गाता

परिचय :– वैदिक काल का आरम्भ आर्यो के आगमन से हुआ है। वैदिक सभ्यता ग्रामीण सभ्यता थी इसको दो भागों में विभाजित किया गया है।

1. पूर्व वैदिक काल (ऋग्वैदिक काल)–1500–1000 ई0 पूर्व
2. उत्तर वैदिक काल –1000–600 ई0 पूर्व

वैदिक काल में वर्ग व्यवस्था लागू हो गई थी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र नामक वर्ग स्थापित हो गये थे। इस चारों वर्गो में सबसे ऊपर ब्राह्मणों का अस्तित्व था। यही वर्ग सभी वर्गो को विद्या और संगीत का ज्ञान देते थे। इस प्रकार संगीत पर पूर्ण अधिकार ब्राह्मणों का ही हो गया था। इस काल में संगीत का उद्गम् यज्ञों के द्वारा हुआ तथा यज्ञों के द्वारा ही संगीत का सम्वर्धन तथा पोषण हुआ।

इस काल में स्त्रियाँ भी गायन, वादन एवं नृत्य कला में जमकर भाग लिया करती थी। इस काल में मुख्य रूप से स्त्रीयाँ वीणा वादन में भाग लिया करती थी। स्त्रीयॉ किसी भी संगीत सम्मेलन में बंहिचक भाग लिया करती थी। स्त्रीयों के द्वारा गायन, वादन एवं नृत्य प्रस्तुति गर्व की बात थी उन्हें समाज में इज्जत की दृष्टि से देखा जाता था। वैदिक काल में विद्वानों का कहना है कि कलाकारों का चरित्र बड़ा ही उच्च कोटि का था वो किसी भी प्रलोभन में फसते नहीं थे वो संगीत को पूजा मानते थे एवं उसकी पवित्रता के साथ कोई समझौता नहीं करते थे संगीत साधना के लिए वे बड़े से बड़े आकर्षण का त्याग करने को सदा तैयार रहते थे। वैदिक काल में गायन, वादन एंव नृत्य के मिश्रतयथेष्ट भूमि उनके द्वारा तैयार की गई। इस काल में स्त्रियों द्वारा खुली जगह पर नृत्य का आयोजन किया जाता था इन सभाओं में वे बेहिचक भाग लेती थी उन पर कोई दबाव नहीं रहती थी। इस काल में समूह नृत्य जिसमें स्त्री एवं पुरूष दोनों भाग लेते थे, इस काल की विशेषता थी। अश्वमेद्य

यज्ञों में मनोरंजन के निमित गाथा, गान तथा वीणा आदि वाद्धों का वादन किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि गायन में प्रवीण कलाकार उच्च कोटि के वादक एंव प्रबंधकार भी हुआ करते थे, स्त्रियाँ उन कलाकारों की ओर ही आकर्षित होती थी जो उच्च कोटि के कलाकार हुआ करते थे। उच्च कोटि की स्त्रियाँ जहाँ गायन, वादन की शिक्षा लेती थी वही निम्न जाति की स्त्रियाँ लोकनृत्य में प्रवीण हुआ करती थी।

आर्यो ने संगीत की पवित्रता में कोई कमी नहीं आए इसे धर्म से जोड़ दिया, धर्म की चादर में सगीत को लपेटकर दोनों का एकीकरण कर दिया। यही कारण है कि संगीत कभी नैतिकता से नीचे नहीं आई और कलाकार भी नैतिकता के उच्च शिखर से नीचे नहीं आए। आर्यो के जीवन का कोई भी भाग ऐसा नहीं था जो संगीत से जुड़ा न हो भगवान की उपासना का उनका एक मात्र साधन संगीत ही था।

वैदिक काल में ऋषिमुनि यज्ञ करते समय वेदों के रिचाओं का गान किया करते थे, सामगान कुशल ऐसे कुछ ऋषियों के कुल एवं घराने इसके लिए प्रसिद्ध थे। अंगिरशा ऋषि का कुल सामगान कुशल था। ऐसा ऋगवेद में लिखा है। चारो वेद ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेदन, अर्थवेद इन चारों वेदों का पठन करते समय उदात्त, अनुदात्त, स्वरित एवं प्रच्येत इन चार स्वर का उपयोग करना होता है।

तालों का उच्चारण अवयव में सबसे बड़ा स्थान है

उदात–प्रयत्नों से प्रेरित होकर जब वायु हमारे कंठ तालू से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करती है। स्वर उत्पन्न करती है तो वह स्वर उदात्त स्वर कहते है।

अनुदात्त– उसी प्रकार तालु के नीचले भाग से उच्चारित स्वर अनुदात्त कहलाते है।

स्वरित – उदात् व अनुदात्त के वर्ण धर्म से मिलकर उच्चारित स्वर स्वरित कहलाता है।

प्रच्येत – वेद पाठ विधि में एक प्रकार का स्वर जिसके उच्चारण के विद्यान के अनुसार पाठक को अपना हाथ नाक के पास ले जाना होता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाला स्वर प्रत्येत् कहलाता है। वैदिक साहित्य में ऋंग, यजु व साम ऐसे तीन वेद या प्रकार है, ये तीनों वेदों में पहले दो वेद ऋगवेद और यजुर्वेद पढ़ने योग्य है तथा साम वेद पढ़ने एवं गाने योग्य ऐसे दो रूपों वाला है। इसका पठन रूप गौण है एवं गेय रूप मुख्य है। संसार में सबसे प्राचीन संगीत सामवेद में मिलता है। उस समय स्वर को यम कहते थे। वैदिक काल में तीन स्वरों का गान सामिक कहलाता है। इस काल में तीन स्वरों से ही गान होता था यज्ञों में देवताओं का अहवान करने के लिए सामगायन के द्वारा मुख्य रूप से होती थी ऋचाओं के द्वारा मुख्य देवताओं को हमी प्रदान करना और सामगायन

के द्वारा उनको पुनः स्तबन करना इस प्रकार से यज्ञ अनुष्ठान की विधि की जाती थी, जिस यज्ञ में सामगायन नहीं वह यज्ञ ही नहीं ऐसा भी कहा गया है।

भगवत गीता के अनुसार वेदों में सामदेव ''वही मैं हूँ'' ऐसा कहकर भी श्री कृष्ण ने सामदेव का श्रेष्ठ तत्व स्वमुख से व्यक्त किया है। वैदिक काल में तीन स्वरों का गान सामिक कहलाता था। सामिक शब्द से ही जान पड़ता है कि पहले साम तीन स्वरों में गया जाता है ये स्वर आज के गंधार, रिषभ एवं षड्ज जैसे थे, धीरे–धीरे गान चार, पाँच, छः एवं सात स्वरों की होने लगी। छः एवं सात स्वरों के साम बहुत कम मिलते है। अधिक्तर साम तीन से पाँच स्वरों के ही मिलते है। साम गान की अपनी विशिष्ट स्वरलिपि है। संगीतकला के अंतर्गत परवर्ती संगीत परम्परा में उपर्युक्त तीनों ही तत्व परिगणित किये गए है। साम को विभिन्न स्तोभों द्वारा गाया जाता था। इन स्तोभों से युक्त एवं रहित दोनों प्रकार से साम गाया जाता था। साम के कई प्रकार प्रचलित थे। जिनमें ''वर्षा–हार'' साम भी एक प्रचलित प्रकार था। साम गायन स्तुति रूप में भी होता था, जैसे सूर्य, अग्नि की स्तुति साम स्त्रोतों द्वारा की जाती थी ऐसी मान्यता थी। साम गायन में देवी शक्ति का निवास माना जाता था। वैदिक काल में सामगायन में वादन की संगति के साथ की गायन होता था। दोनों की संगति वाले संगति वाद्यों चथा तंत्री, (तत्) सुषिर एवं अवनद्ध वाद्यों का वादन होता है। सोमस्तुति के अवसर पर यज्ञगृह में बाण नामक वाद्य के साथ तदनुरूप गायन होता था। यज्ञों के अवसर पर उद्गाताओं की पत्नियाँ भी गायन की संगति विभिन्न वीणाओं द्वारा करती थी। वीणा गाथी संज्ञा जो वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त की गई है।

वीणा वादन ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों करते थे वीणा गाथी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों की उपस्थिति आवश्यक मानी गई थी अन्यथा स्पष्ट कहा गया था कि यदि दोनों में से किसी एक का गायन होगा तो क्रमशः क्षत्र एवं ब्रह्म उनसे दूर चला जाएगा। दोनों गायन तो एक साथ करते थे लेकिन उनकी विषय–वस्तु भिन्न–भिन्न होती थी। जब ब्राह्मण गायक यज्ञकर्ता की प्रशस्ति का गायन करता था तब उसकी रचना की विषय वस्तु यज्ञ से संबंधित होती थी। इसके विपरीत जब क्षत्रिय गायन करता था तो उसकी रचना की विषय वस्तु यज्ञकर्ता की युद्ध एवं विजय की सफलताओंसे संबंधित होती थी इस काल में सामसंगीत के अतिरिक्त कुछ अन्य भी उल्लेख प्राप्त होता है जिसे साम गायन के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता।

इस प्रकार के गायन के अंतर्गत गाथा, नाराशंसी, उक्थआदि का उल्लेख आता है जो प्रशस्ति गायन के अनुरूप थे। गाथा एवं नाराशंसी वैदिक यज्ञों के इतने अभिन्न अंग बन चुके थे कि उनका गायन बड़े–बड़े महत्वपूर्ण यज्ञों में होता था,

अश्वमेघ यज्ञ के दिन जब घोड़े को छोड़ा जाता था ''वीणा गणगिन'' गाथा का गायन करते थे।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकालना अस्वाभाविक न होगा की वैदिक काल में संगीत की स्पष्ट ही दो धाराएँ प्रचलित थी प्रथम साम संगीत एवं द्वितीय सामेत्तर जिसके अंतर्गत गाथा, नाराशंसी इत्यादि को रखा जा सकता है।

साम गायन पूर्णतः धार्मिक प्रतीत होता है, उसकी विषय वस्तु देवस्तुति संबंधी ऋचाएँ थी, जबकि सामेत्तर संगीत की विषय वस्तु सामान्यतः प्रशस्तियाँ प्रतीत होती है। जो जन साधारण के कुछ निकट प्रतीत होता है। वैदिक काल में वीणाओं के भिन्न–भिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है जैसे–वाणवीणा, कर्करि, काण्डवीणा, अपघाटिला, गोद्यावीणा आदि।

''बाण'' नामक तंत्री वाद्य वैदिक काल का सर्वाधिक प्रचलित एवं महत्वपर्ण प्रकार था। इसे ''महावीणा'' की संज्ञा भी दी गई है। इस वीणा की विशेषता इसमें लगे 100 तारों से हुई जिसकी तुलना पुरूष की सौ वर्ष की आयु से की गई है। वैदिक काल में अनवद्ध वाद्यों मे दुन्दुभि, भूमिदुन्दुभि प्रचलित वाद्य था। दुन्दुभि का वादन दण्ड से किया जाता है। यह दण्ड ''आहनन'' कहलाता था। वीरों को उत्साहित करने के लिए दुन्दुभि का प्रयोग होता था।

सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत वेणु का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक काल में गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों तत्वों का यथेष्ट प्रचार था। संगीत कला को ''शिल्प'' के रूप में भी उल्लिखित किया गया है। वैदिक में लौकिक संगीत का कही भी उल्लेख नहीं मिलता प्रत्येक उल्लेख का संदर्भ ही मिलता है।

सन्दर्भ :–

1. शर्मा डॉ0 मृत्युंजय, त्रिपाठी राम नारायण, संगीत मैनुअल, पृ0–84–89
2. टाक सिंह डॉ0 तेज, सुबोध संगीत शास्त्र पृ0–2
3. शर्मा भगवत शरण, भारतीय संगीत का इतिहास–14
4. शर्मा भगवत शरण, भारतीय संगीत का इतिहास–66
5. सिंह, डॉ0 ठाकुर जयदेव भारतीय संगीत का इतिहास पृ0–106